समय से संवाद 23

नदियाँ उदास बहती हैं

सम्पादक : अमिता

नदियाँ उदास बहती हैं

संपादक:

अमिता

समय से संवाद

एक सच्चे लोकतन्त्र में न तो किसी तरह की सामाजिक गैरबराबरी की जगह हो सकतीहै और न ही किसी तरह की आर्थिक असुरक्षा की। इन दोनों कसौटियों पर परखें तो अभी हम एक पिछड़े हुए लोकतन्त्र में जी रहे हैं। भारतीय लोकतन्त्र को नियन्त्रित करने वाली समकालीन राजनीति में जिस तरह के नेतृत्व का बोलबाला बढ़ता जा रहा है, ऐसे में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि सवा सौ करोड़ की आबादी वाले इस देश में पंचायत से लेकर संसद तक नेतृत्व जिनकी मुट्ठी में है, वे किस वर्ग के हैं और वे सही अर्थों में किनका प्रतिनिधित्व करते हैं? देश के 70 प्रतिशत लोग जो 20 रुपये रोजाना पर गुजर करने के लिए विवश हैं, क्या यह नेतृत्व उनकी भूख, उनकी शिक्षा,उनके स्वास्थ्य और उनके घर के लिए सरोकारी है? इनकी राजनीति में किसानों के संघर्ष और पीड़ा के लिए कितनी जगह है? भारत अभी भी कृषि प्रधान देश है, लेकिन संसद में किसानों के कितने नुमाइन्दे हैं? आखिर कारण क्या है कि सबसे अधिक आत्महत्या किसान ही करते हैं? अब इस देश में जो चुनावी संस्कृति पनपी है उसमें शायद ही कोई किसान विधायक या सांसद बनने का सपना देखता हो। इस देश की अधिकांश आबादी (गरीब) मतदाता बनकर रह सकती है या उपभोक्ता बनकर। इससे ऊपर उसकी कोई हैसियत ही नहीं है।

एक समय था जब राजनीतिक और सामजिक क्षेत्र में नेतृत्व स्वाभाविक तौर पर उभरता था और उसे स्वाभाविक स्वीकृति भी मिल जाती थी। समाज ईमानदारी से अपना नेता चुन लेता था, और नेताओं में भी वे गुण होते थे जो होने चाहिए थे। तब के नेताओं को अपेक्षाकृत निष्ठा, नैतिकता और सामाजिक मूल्यों की परवाह रहती थी और उनके गम्भीर सामाजिक सरोकार होते थे। इसलिए यह अकारण नहीं कि तब साहित्य और पत्रकारिता द्वारा निर्धारित एजेण्डे का अनुपालन राजनीति करती थी। अब परिस्थितियाँ बिलकुल बदल गयी हैं, आज सामजिक व्यवस्था, कार्यपालिका और विधायिका की तो सर्वोच्च नियन्ता राजनीति है ही, न्यायपालिका और मीडिया भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तौर पर उसके प्रभाव से पूरी तरह मुक्त नहीं है। जन आन्दोलनों की बात यदि छोड़ दें तो संसदीय राजनीति में अब नेता समाजसेवा और जनसंघर्ष जैसे लम्बे, उबाऊ और थका देने वाले रास्ते से नहीं आते, अब वे राजनीतिक और औद्योगिक घराने से आते हैं या फिर नौकरशाही और आपराधिक पृष्ठभूमि से।

राजनीति की यह अराजकता और अपसंस्कृति मौजूदा लोकतन्त्र का बड़ा संकट है और यही संकट आज के समय का संकट है। इस पुस्तक शृंखला का बुनियादी सरोकार अपने समय से संवाद करना है। समय का तात्पर्य उस सच्चाई से भी है कि बच्चे यदि देश के भविष्य हैं तो बच्चों के लिए शिक्षा और साहित्य का एक उन्नत परिवेष होना चाहिए। कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका का स्वभाव यदि जनविरोधी हो गया है तो मीडिया की जिम्मेवारी जनपक्षीय होनी चाहिए। दुर्योग यह है कि मीडिया कारपोरेट के चंगुल से निकल नहीं पा रहा है। जाहिर है उसकी प्राथमिकता सत्य की खोज करने और झूठ को ध्वंस करने में नहीं रही, वह कारपोरेट और सत्ता के बीच दलाली के दलदल में फँसता जा रहा है। पिछले दस वर्षों में 'सबलोग' के माध्यम से हर महीने किसी एक राजनीतिक या सामाजिक मुद्दे पर पड़ताल होती रही है। 'सबलोग' के पाठकों की वर्षों से यह इच्छा रही है कि 'सबलोग' में प्रकाशित महत्त्वपूर्ण सामग्री को पुस्तक रूप में लाया जाए। इसी सन्दर्भ में जनवरी 2015 के पुस्तक मेला के दौरान 'समय से संवाद' शृंखला का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। 'सबलोग' के बाहर प्रकाशित और अप्रकाशित महत्त्वपूर्ण लेखों को भी इस योजना में शामिल किया गया। इस सिलसिले में हमने दस युवा सम्पादकों (अच्युतानन्द मिश्र, आषा, पंकज षर्मा, स्वतन्त्रा मिश्र, अकबर रिजवी, रामनरेष राम,अनुज लुगुन, संजीव चन्दन, महेश्वर, नीरू अग्रवाल) को जोड़ा, जिन्होंने साहित्य, रंगमंच, सिनेमा, शिक्षा, मीडिया, दलित राजनीति, आदिवासी साक्षरता, स्त्री विमर्श, बाल साहित्य, हिन्दी उपन्यास पर दस पुस्तकें सम्पादित कीं। यहाँ यह उल्लेख अनावश्यक नहीं होगा कि पिछले पुस्तक मेला में इस शृंखला की दसों पुस्तकें सर्वाधिक चर्चे में रहीं।

'समय से संवाद' शृंखला की दूसरी कड़ी में साहित्य, संस्कृति, राजनीति और सिनेमा से सम्बंधित विषयों पर बिपिन तिवारी, प्रमोद रंजन, धर्मवीर सिंह, मुन्ना पाण्डेय, सर्वेश कुमार मौर्य, धनंजय राय, राजीव रंजन गिरि, पंकज चौधरी, प्रमोद मीणा और नरेन्द्र शुक्ल ने महत्त्वपूर्ण पुस्तकें सम्पादित कीं। इस बार फिर साहित्य, संस्कृति, नारी-विमर्श और पर्यावरण के मुद्दों पर कालूलाल कुलमी, सुरेन्द्र कुमार, सरोज कुमारी और अमिता की पुस्तकें प्रस्तुत हैं। दरअसल इस शृंखला के माध्यम से हम साहित्य, समाज, संस्कृति और राजनीति के बुनियादी मुद्दों की पड़ताल करते हैं। जितने कम समय में सभी सम्पादकों ने इन पुस्तकों को तैयार करने में जो मेहनतकी है उसके लिए धन्यवाद जैसा औपचारिक शब्द काफी छोटा है। हाँ, यह कहने में मुझे कोई हिचक नहीं हो रही है कि ये सभी युवा सम्पादक अपनी-अपनी विधा में

सृजनशील प्रतिभा के धनी हैं, किसी प्रकाशन योजना में इनका एकजुट होना हिन्दी के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। मुझे विश्वास है कि ‘समय से संवाद’ शृंखला की ये पुस्तकें भी पाठकों को पहले की तरह पसन्द आएँगी।

किशन कालजयी

भूमिका

नदी में सूखा आंखों में पानी

हम सभी जानते हैं कि सृष्टि की रचना में जल अति महत्वपूर्ण कारक के रूप में विद्यमान है। मानव जाति का इतिहास जल के साथ ही जुड़ा हुआ है। मानव जाति का विकास भी नदियों के कारण ही संभव हो पाया है। नदियाँ जीवनदायिनी होती हैं। प्राचीन समय में नदियों के आस-पास के जो क्षेत्र होते थे वह काफी विकसित हुआ करते थे। जिस क्षेत्र में जितनी अधिक नदियां थी उस क्षेत्र की समृद्धि उतनी ही अधिक हुयी। यहां तक कि खेती के लिए किसानों को खाद और कीटनाशकों की जरूरत भी नहीं पड़ती थी, नदियां अपनी धारा के साथ ही तमाम तरह की उर्वरता को समाहित कर लाती थी। पेड़-पत्ते और घर के कूड़े से बनी जैविक खाद ही जमीन की उर्वरता को लगातार बढ़ाती जाती थी। चारों ओर हरियाली बिछी रहती थी। नदी और तालाब कल-कल के गीत गाते थे और पेड़-पौधे संगीत सुनाते थे।

किसी भी राष्ट्र या राज्य के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, भौतिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में इनका प्रमुख स्थान है। नदियाँ पेयजल, सिंचाई और परिवहन का प्रमुख स्रोत भी रही हैं, जिसके कारण आदिकाल से ही सभ्यताओं के विकास में नदियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यदि इतिहास में जाएं तो हम पाते हैं कि मिस्त्र, सिंधु आदि सभ्यताएं नदी अथवा प्रकृति के कारण ही सबसे समृद्ध सभ्यताओं में गिनी जाती है जिसे 'नदी की देन' कहा भी गया है। गंगा, गोदावरी, यमुना और भगीरथी हमारे संस्कार में बसी हुयी है। गंगा को तो हिंदू संस्कृति का प्रतीक माना जाता है। लेकिन अब ऐसा प्रतीत होता है कि इन नदियों से पानी नहीं आंसू निकल रहे हैं।

मेरा जन्म गया में हुआ। गया कई कारणों से इतिहास में दर्ज है जिसमें से एक कारण फल्गु नदी भी है। यह एक ऐसी नदी है जिसके किस्से कहानियों को सुनते समय हम पूरी तरह से उसमें खो जाते हैं। लेकिन जब इसके सूखे और बदहाली को देखती हूँ तो मन दुखी हो जाता है। इस नदी के बदहाली का मुख्य कारण सीता माता के अभिशाप को माना जाता है। किंतु वर्तमान समय में देश की अन्य नदियों को देखकर भी बिल्कुल ऐसा नहीं लगता कि वे शापित नहीं हैं।

हम बचपन से सुनते आये हैं कि- 'जल ही जीवन है।' लेकिन इस जीवन अर्थात् जल के महत्व को हम कभी समझ ही नहीं सके। हमे जीवन देने वाली जल अथवा नदियों की बदहाल स्थिति को राम तेरी गंगा मैली फिल्म के उस

गाने से भी समझ सकते हैं जिसके बोल थे ‘एक दुखियारी कहे बात ये रोते-रोते, राम तेरी गंगा मैली हो गयी।’ लेकिन ये पुरानी बात हो गयी है यदि अब इस गाने को लिखा जाता तो निश्चित ही इसके बोल होते ‘राम तेरी गंगा मैली कर दी गयी’। जिसके जिम्मेदार हम और आप हैं। जय प्रकाश चौकसे ने 24 दिसंबर 2016 के दैनिक भास्कर अखबार में लिखा था कि जिस दिन तबके प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने लाल किले से गंगा को प्रदूषण मुक्त करने की बात की, उसी दिन प्रात: राज कपूर की ‘राम तेरी गंगा मैली’ का प्रदर्शन हुआ, जबकि फिल्म निर्माण काफी पहले ही प्रारंभ हो चुका था। राजीव गांधी के बाद बने प्रधानमंत्रियों ने भी गंगा को प्रदूषण मुक्त करने की बात दोहराई परंतु इस क्षेत्र में अभी तक कोई ठोस काम नहीं हुआ है और गंगा के मैले होने का सिलसिला बढ़ता ही चला जा रहा है।

अपने पाप को नदियों में धोते-धोते और अपना शुद्धिकरण करते-करते हमने इन नदियों को कितना अशुद्ध कर दिया, इसका अंदाजा हम शायद ही लगा सकते हैं। जिन नदियों को हम एक तरफ पूजते हैं उन्हीं नदियों में हम दूसरी तरफ मल-मूत्र त्याग देते हैं, घरों-कारखानों आदि के अपशिष्टों को इसमें बहा देते हैं। क्या हम अपने घर के पूजा गृह या अतिथि गृह आदि में ऐसा कर सकते हैं? बिल्कुल नहीं, क्योंकि हम उसे अपना समझते हैं। इसलिए घर का एक छोटा सा हिस्सा पहले से ही तय कर दिया जाता है जहां हम मल-मूत्र का त्याग करते हैं तथा अन्य गंदे काम करते हैं। तो फिर देश-दुनिया में पूजी जाने वाली नदियों के साथ सौतेला व्यवहार क्यों किया जाता है?

उद्योग में इस्तेमाल होने वाला पानी बगैर परिशोधन के ही नदियों में छोड़ दिया जाता है। भारत में गंगा, यमुना और गोदावरी सहित सभी नदियां प्रदूषण से त्रस्त हैं। यमुना में जिस तरीके का गाद दिखता है वह ज़हर से कम नहीं कहा जा रहा है। बांध में प्रदूषण की मात्रा और भी बढ़ जाता है, क्योंकि वहां पानी के बहने की गति और प्रकृति में बदलाव आ जाता है। नदियों पर बड़े-बड़े बांध बनाकर बिजली पैदा की जा रही है। नदियों पर बांध और नहर बनाने से इसमें गाद का स्तर बहुत तेजी से बढ़ता है और साथ ही प्रदूषण का स्तर भी। अब तो नदियों की मछलियों को मारने के लिए विस्फोटक तक अपनाये जा रहे हैं।

नदियों को प्रदूषण मुक्त करने के लिए धार्मिक कर्मकांड और उद्योगों के कचरे को बहाने पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जा रहा है। कल-कारखानों की चिमनियों से निकलने वाले धुएं और व्यवहार में लाए जा रहे पानी के निकास का कभी भी सही ढंग से प्रबंधन नहीं होता है। सरकार कभी यह कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाते कि कल-कारखानों से निकलने वाला धुआं और दूषित जल-मल प्रदूषण में इजाफा कर रहा है।

अगर हम यह कहें कि जिन नदियों के जल ने हमें जीवन दिया लगातार हम उन्हीं नदियों के ऊपर अत्याचार कर रहे हैं तो यह अतिश्योक्ति नहीं होगी। प्रसिद्ध पर्यावरणविद् अनुपम मिश्र जी के शब्दों में कहें तो- ''जिस तरह द्रौपदी के चीर हरण की बातें थीं, उसी तरह जल हरण की बातें हो रही है। दुर्भाग्य से नदियों से जो जल हरा जा रहा है, उसे पीछे से देने वाला कोई कृष्ण नहीं है।'' यही वजह है कि निरंतर नदियों पर सूखा और बदहाली हावी होती जा रही है। अब तक नदियों पर जो शोध सामने आये हैं उस अनुसार 70 प्रतिशत नदियों के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है। देश की 290 नदियों में से 205 नदियों की स्थिति चिंताजनक बनी हुयी है जिसमें 14 बड़ी नदियां हैं।

बाजारवाद ने नदियों पर भी अपना प्रभाव जमा लिया है। कहीं पानी का आज बोतलीकरण किया जा रहा है तो कहीं नदियों का बांधकरण। प्रकृति प्रदत्त संपदा की बोली लगने लगी है। दुर्भाग्य से मेरी नौकरी छत्तीसगढ़ में है और यहां नदियों की लगने वाली बोली को बहुत ही नजदीक से मैं महसूस कर रही हूँ। शिवनाथ पहली नदी है जिसे निजी हाथों में सौंपकर उसके सामुदायिक अधिकार को खत्म करने की शुरूआत की गयी। इसी संपदा की रक्षा के लिए अपनी जीवनदायिनी नदी केलो को बचाने के लिए 26 जनवरी 1998 को देश की पहली महिला सत्यभामा अनशन के दौरान शहीद हो गयीं लेकिन इसका भी कुछ फायदा नहीं हुआ। नदियों का सरेआम आज भी बाजार में मोल-भाव करके बेचा जा रहा है। विकास के नाम पर विनाश का यह सिलसिला थमने का नाम ही नहीं ले रहा है। यह सब प्रकृति के साथ एक खतरनाक खेल के सिवा कुछ नहीं है। जंगल और जमीन प्रकृति के अंग ही नहीं हैं बल्कि प्रकृति की आत्मा हैं और इनसे मनुष्य का आत्मिक संबंध सदियों से रहा है। लेकिन इन तीनों का जिस तरह से दोहन और दुरूपयोग किया जा रहा है वह बेहद चिंताजनक है।

इस साल गर्मी के दिनों में महाराष्ट्र के लातूर जिले में पानी के लिए जिस तरह से वहां के लोग जूझ रहे थे, वह इसी का नतीजा था। पहली बार पानी के लिए लोगों को इस प्रकार से मार-काट करते हुए देखा गया। पानी की चोरी की जा रही थी, पानी खरीदने के लिए पैसे तो लोगों के पास थे लेकिन पानी नहीं था। एक रिपोर्ट के अनुसार यदि नदियों का इसी तरह से दोहन होता रहा तो हरियाणा में अगले 15 साल में भू-जल की एक बूंद भी नहीं बचेगी। अब वे दिन दूर नहीं जब देश के अन्य हिस्सों में भी यही स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। शायद देश की इसी स्थिति को देखते हुए यह अक्सर कहा जाता है कि अगला विश्वयुद्ध पानी के लिए होगा।

विश्वप्रसिद्ध अर्थशास्त्री थॉमस माल्थस ने जनसंख्या का सिद्धांत देते हुए कहा था कि जनसंख्या के अनुसार संसाधनों में बढ़ोतरी नहीं हो सकती है। इस विकास के कारण संसाधनों पर दबाव बहुत ही ज्यादा बढ़ जाता है। उन्होंने यह भी कहा था कि इस दबाव के कारण प्राकृतिक विपदाओं में बढ़ोतरी होगी और इससे जनसंख्या दबाव को प्रकृति अपने तरीके से कम कर लेगी। बाढ़, सूखा आदि ऐसे ही विपदायें हैं।

जीवन में नदियों से जो शीतलता मिलती है वे शीतलता और आनंद शायद ही हमें किसी और चीज से मिल सकती है। सिर्फ यही नहीं हमारे देश में हिंदुओं के छठ पूजा जैसे कई ऐसे महत्वपूर्ण त्योहार हैं जिसमें बिना नदी को पूजे त्योहार को पूर्ण नहीं किया जा सकता है। इसीलिए ये नदियां मनुष्य की भावनाओं से जुड़ी हुई हैं। नदियां हमारे जीवन के हर सुख-दुख का हिस्सा है। जन्म से लेकर मृत्यु तक कई ऐसे संस्कार हैं जो नदियों के बिना पूर्ण नहीं हो सकता। यही कारण है कि गंगा जैसी नदियों को चुनावी मुद्दे के रूप में सबसे ज्यादा भुनाया जाता है। साल 2014 के लोकसभा चुनाव में प्रधानमंत्री मोदी ने भी यही किया। गंगा की सफाई के नाम पर करोड़ों रूपये खर्च किए जा रहे हैं परंतु गंगा साफ होने के बदले और मैली होती जा रही है। 1986 में राजीव गांधी ने भी बहुत उत्साह से 'गंगा कार्य योजना' लागू किया था पर यह कामयाब नहीं हुआ क्योंकि यह किसी स्पष्ट समझदारी से नहीं बनायी गई थी और इसके कार्यान्वयन का स्पष्ट खाका विकसित नहीं हुआ था। सिर्फ पैसे से नदियों की हिफाजत नहीं की जा सकती है। गंगा तथा अन्य नदियों के शुद्धिकरण का मुद्दा राजनैतिक, धार्मिक और अध्यात्मिक तो बन गया पर नैतिक, पारिस्थितिक और राष्ट्रीय नहीं बन सका। इसे भावनात्मक तो बनाया जा रहा है, पर तार्किक नहीं।

दिनांक 11.12.16 को कड़ाके की सर्दी के बावजूद नर्मदा नदी के शुद्धिकरण के लिए यहां रामघाट से 3 हजार 444 किलोमीटर की 'नमामि देवी नर्मदे सेवा यात्रा' शुरू की गई। मध्यप्रदेश सहित महाराष्ट्र, गुजरात तक 144 दिनों में पूरी होने वाली इस यात्रा की ब्रांडिंग में मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने पूरी ताकत झोंक दी है। इस यात्रा के तहत नर्मदा नदी के शुद्धिकरण के लिए कुंड बनवाने की योजना, शौचालय निर्माण की योजना आदि को शामिल करते हुए लोगों को इससे यात्रा से जोड़कर उन्हें जागरूक करने का संकल्प लिया गया है। निश्चय ही यह यात्रा ऐतिहासिक है लेकिन सवाल यह उठता है कि क्या इससे नर्मदा का शुद्धिकरण हो पायेगा या यह भी गंगा की स्थिति में ही बनी रहेगी?

नदियों के शुद्धिकरण के लिए कई योजनायें लाये गये, मंत्रालय बनाये गये किंतु सबकुछ अबतक निरर्थक साबित हुए। जल संसाधन, नदी विकास एवं गंगा पुनरूद्धार मंत्रालय के सचिव शशि शेखर ने हाल ही में माना था कि मंत्रालय

अपना काम ठीक से नहीं कर पाया। मंत्रालय नदियों के साथ हो रहे खिलवाड़ से निपटने के लिए कोई कार्य योजना बनाने में विफल रहा। श्री शेखर का कहना है कि नदियों, नदी तटों और इसके संवेदनशील इलाकों का दोहन किया गया जिसका नतीजा आज हमारे सामने है। इसका प्रमुख कारण राजनेताओं और निर्माण क्षेत्र के ठेकेदारों के बीच के सांठ-गांठ को माना जा रहा है। मौजूदा एनडीए सरकार द्वारा गंगा पुनरूद्धार की जिम्मेदारी भी मंत्रालय को दी गई है। अब मंत्रालय का नाम बदलकर 'नदी विकास एवं गंगा पुनरूद्धार' रख दिया गया है किंतु इसकी कोई सार्थकता सिद्ध नहीं हो पायी।

फिर भी नदियों से जुड़ाव मनुष्य जीवन की प्रकृति में सुमार है जिसे बदला नहीं जा सकता है। इसीलिए नर्मदा बचाओ आंदोलन, टेहरी बांध विरोधी आंदोलन, मूक घाटी, विष्णु प्रयाग बांध, चिलिका आंदोलन एवं पानी बचाओ आंदोलन आदि कई ऐसे आंदोलन हमारे सामने हैं जो जल से जुड़े आंदोलन हैं और नदियों को बचाने के लिए लोग आज भी अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार हैं।

एक बात तो तय है कि यदि हम दृढ़ संकल्प कर लें तो हमारी इन नदियों का कोई कुछ नहीं बिगाड़ पायेगा। गंगा और अन्य नदियों को गंदा नहीं करने का हम यदि संकल्प ले लें तो ये नदियां कभी मैली नहीं हो पायेगी और इन नदियों की सफाई के लिए करोड़ों रूपये खर्च भी नहीं करने होंगे और ना हीं सरकार के मोहताज होंगे। इस प्रकार नदियों के सफाई की राजनीति करने वाले लोगों की दुकानें भी खुद-ब-खुद बंद हो जायेगी।

दिल्ली के जल संसाधन मंत्री कपिल मिश्रा का मानना है कि नदी का प्रवाह और देश का प्रशासन दो अलग बातें हैं। हमें नौकरशाहों, सार्वजनिक और सिविल सोसायटी के लोगों के साथ मिलकर नदियों पर काम करना होगा। नदियों को प्रदूषण-मुक्त कराने में नागरिक और सामाजिक संगठनों के प्रयास ज्यादा सार्थक सिद्ध हुए हैं। जब लोगों में जागरूकता पैदा होगी, तभी इन औद्योगिक संस्थानों की मनमानी पर पाबंदी लग सकेगी। हरिहर, कर्नाटक के स्थानीय लोग तुंगभद्रा नदी के अस्तित्व को बचाने के लिए कई दशकों से संघर्षरत रहे हैं। प्लाचीमाड़ा, केरल के गांव के लोगों ने अपने वजूद की लड़ाई मानकर नदी जल को प्रदूषण-मुक्त कराया। देश के अन्य हिस्सों में भी लोगों को ऐसे ही संकल्पबद्ध होना पड़ेगा।

आज गंगा तथा अन्य नदियों में मुर्दे बहाने और जलाने का क्या औचित्य है? क्या हमें कहीं से भी नदियों में मल, कूड़ा, रसायन या कुछ भी प्रदूषित करने का अधिकार है? क्या करोड़ों लोगों को एक साथ हरिद्वार या इलाहाबाद आने की जरूरत है? क्या हिमालय या उत्तराखंड में विकेंद्रीकृत जन पर्यटन विकसित नहीं होना चाहिए? ताकि केदारनाथ

जैसी त्रासदी दोबारा न हो। पॉलीथीन को प्रतिबंधित किया जाना चाहिए। नाजुक हिमालयी इलाकों में जाना प्रतिबंधित अथवा नियंत्रित होनी चाहिए। जलवायु परिवर्तन के विभिन्न पक्षों के साथ ग्लेशियरों तथा मानसून की प्रवृत्ति में हो रहे बदलाव का लगातार गहन अध्ययन होना चाहिए ताकि कोई एकाएक यह न कह सके कि आने वाले समय में हिमालय तथा तिब्बत के ग्लेशियर पिघल कर बह जाएंगे।

पर्यावरणविद् अनुपम मिश्र जी का भी मानना था कि ऐसे काम सरकारी अध्यादेशों से नहीं बल्कि सामाजिक साझेदारी से ही संभव हो सकता है। यमुना, गंगा की सफाई मामले में अनुपम जी का कहना था कि 'गंगा का बाप आ जाए या गंगा का भेजा सरकार में आ जाए, लेकिन वह गंगा, यमुना को साफ नहीं कर पाएंगे क्योंकि जिस तरह से वे काम कर रहे हैं वह नदियों को साफ करने का नहीं बल्कि उन्हें और मैला करने का है। नदियों को अपनी आजादी चाहिए जैसे इंसान को आजादी चाहिए। जब से हमने नदियों की आजादी छीनी है, नदियां नाला बन गई हैं। इनको नदी बनाना तब तक संभव नहीं है जब तक इनका पर्यावरणीय प्रवाह सुनिश्चित नहीं होगा।'

यदि नदियां नहीं होंगी तो नदियों पर 'नदिया की पार' जैसी कालजयी फिल्में कैसे बनेगी जो हर किसी के दिल से आज भी जुड़ी है। ना हीं नदियां किनारे कंगना हेरा पायेगा और ना हीं पनघट पर नंदलाल छेड़ पायेंगे। हमारे पूर्वजों का जल तर्पण और पिंडदान कैसे होगा? जिसके बिना कभी न मुक्त हो पाने की मिथक इस समाज में आज भी व्याप्त है। लेकिन नदियों के बिना हम जीवन से जरूर मुक्त हो जायेंगे।

मुझे पहली बार किसी पुस्तक को संपादित करने का अवसर मिला। नदी जैसे महत्वपूर्ण विषय पर मैं इस किताब को संपादित कर रही हूँ जिसका सौभाग्य मुझे किशन कालजयी जी के सौजन्य से प्राप्त हुआ। किशन जी जितने अनुभवी और ज्ञानी हैं उससे भी कहीं ज्यादा सहज और विनम्र हैं। नयी प्रतिभाओं को मौका देना किशन जी की प्रकृति का हिस्सा है। मैं जब से किशन जी के संपर्क में आयी तब से लगातार उन्होंने मेरा मनोबल बढ़ाया और मेरे विचारों को हमेशा प्रोत्साहित करते हुए मुझे लिखने के लिए प्रेरित करते रहते हैं।

इस पुस्तक में स्वतंत्र भईया के योगदान के बारे में क्या कहूं। उनके लिए कुछ भी कहना कम होगा। स्वतंत्र भईया से जब भी बात होती है तो ऐसा लगता है कि किसी नदी के शीतल जल की अनुभूति हो रही हो। जब भी मेरी भईया से बात हुई हमेशा उन्होंने मेरा मनोबल बढ़ाया और यह किताब भी उसी का परिणाम है। स्वतंत्र भईया ने ही दूरभाष पर सुबह-सुबह मुझसे एक दिन कहा कि अमिता विश्व पुस्तक मेले में मेरी ईच्छा है कि नदियों के संकट को लेकर एक

किताब आये और इसके लिए किशन जी ने तुम्हारा नाम लिया है। मैं तो बिल्कुल डर गयी थी, इस बात को सुनकर। मैं असमंजस में पड़ गयी कि कर पाउँगी कि नहीं? क्या जवाब दूं मैं? लेकिन उन्होंने तुरंत समझ लिया और कहा तुम बिल्कुल चिंता मत करो, मैं तुम्हारे साथ हूँ और यह किताब विश्व पुस्तक मेले में प्रकाशित हो इसके लिए हर संभव प्रयास किया जायेगा। इस किताब को संपादित करने में जितना मेरा योगदान है उससे कहीं ज्यादा योगदान स्वतंत्र भईया का है।

राजन अग्रवाल जी की भी मैं शुक्रगुजार हूँ जिन्होंने तमाम व्यस्तताओं के बावजूद मुझे नदियों के संकट पर केंद्रित सबलॉग का 2014 का अंक उपलब्ध करवाया जिससे किताब को संपादित करने का एक उचित आयाम मिला।

अपने मित्रवत पति का साथ तो बिल्कुल परछाई की भांति मेरे हर सुख-दुख में बना रहता है जिनके योगदान को शब्दों में ढालना संभव ही नहीं है। मेरी मां तथा परिवार के अन्य सदस्यों तथा मित्रों के सहयोग के बिना भी यह किताब संपादित करना शायद मुश्किल ही था। उन सभी की मैं आभारी हूँ। विश्वविद्यालय के उलझनों में डॉ.एस.के. लांझियाना, प्रो. अनुपमा सक्सेना, अखिलेश तिवारी तथा अन्य मित्रों का सहयोग हमेशा मुझे मिलता रहा, जो मेरे मनोबल को विपरीत परिस्थितियों में भी बनाये रखा। प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से जिन लोगों ने इस किताब में सहयोग दिया उन सभी की आभारी हूँ।

अंत में उन सभी लेखकों का धन्यवाद देना चाहूंगी जिनके महत्वपूर्ण लेख पाठकों को, नदियों का हमारे जीवन में क्या महत्व है, यह सोचने पर मजबूर कर देगी। इस पुस्तक में शामिल सभी लेख और उसके लेखक अपने-आप में अति महत्वपूर्ण हैं और उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है इन लेखों के लेखकों का जीवंत अनुभव जो इस पुस्तक की जान है जिसे संपादित करना किसी चुनौती से कम नहीं था।

स्वतंत्र भईया के सहयोग से मिला अनुपम मिश्र जी का लेख इस किताब के लिए सबसे महत्वपूर्ण है जो उनके मुहिम को आगे ले जाने के लिए पाठकों को प्रेरित करेगी। जल पुरूष के नाम से विख्यात राजेन्द्र सिंह जी ने मेरे एक आग्रह पर अपना लेख उपलब्ध करवाया। दिनेश मिश्र जी, अनिल प्रकाश जी, मेरे गुरूवर डॉ. कृपाशंकर चौबे, पूजा मेहरोत्रा जी, अमरेन्द्र किशोर जी, रमेश जी, दिनकर जी और अन्य सभी के लेख नदी की एक ऐसी दास्तां को बयां करती है जिसे पढ़कर मन दुखी हो जाता है और हमारे अंदर कुछ कर गुजरने की कसक सी होने लगती है।

हमारे बीच नदियों पर सबसे ज्यादा काम करने वाले महान पर्यावरणविद् अनुपम मिश्र जी के चले जाने से इस किताब को अंतिम रूप दे पाना मुश्किल हो रहा है। फिर भी मैंने इस किताब में नदियों के विभिन्न पहलुओं को शामिल

करने की भरसक कोशिश की है। यह किताब सिर्फ एक लिखित दस्तावेज नहीं है बल्कि लेखकों के जीवंत अनुभव हैं जिसपर थोड़ा भी अमल किया जाये तो जल संरक्षण किया जा सकता है। अगर इस किताब से समाज में पानी को बचाने के लिए लोगों में थोड़ी भी सकारात्मकता पैदा होती है तो यह महान पर्यावरणविद् स्वर्गीय अनुपम मिश्र को सच्ची श्रद्धांजली होगी जिन्होंने अपना संपूर्ण जीवन पानी तथा पर्यावरण संरक्षण के नाम पर न्योछावर कर दिया।

-अमिता

अनुक्रम

सादगी को जीने और रचने वाले अनुपम अलविदा, आप बहुत याद आयेंगे!	स्वतन्त्र मिश्र	14
सर्वनाश में सर्वसम्मति	अनुपम मिश्र	18
जल महोत्सव	राजेन्द्र सिंह	25
गंगा, हिमालय और पानी	अनिल प्रकाश	29
कोसी की व्यथा	दिनेश कुमार मिश्र	45
जल और संस्कृति की सूखती धार का संरक्षण...!	प्रो. राममोहन पाठक	56
हुगली उदास है	डॉ. कृपाशंकर चैबे	60
यमुना कैसे साफ होगी?	पूजा मेहरोत्रा	65
दुर्गावती एक उदास रूपक	अमरेन्द्र किशोर	78
उत्तर-पूर्व की जीवन रेखा है ब्रह्मपुत्र	दिनकर कुमार	87
कावेरी: दरद न जाने कोय	रमेश कुमार	94
भारत नदियों का देश	अरुण तिवारी	101
नर्मदा जीवनशाला	बाबा मायाराम	109
महानदी पर गहराता संकट के बादल	डॉ. सन्तोष कुमार बघेल	116
लेखक परिचय		127

सादगी को जीने और रचने वाले अनुपम अलविदा, आप बहुत याद आएंगे..!

-स्वतंत्र मिश्र

आज एक और अपना चला गया। सचमुच, मेरे जीवन से एक और अनुपम आदमी चला गया। पर्यावरण की चिंता करने और उसे दुरुस्त करने वाले अनुपम मिश्र नहीं रहे। पिछले कई महीनों से वे कैंसर से जूझ रहे थे, लेकिन मृत्यु की छाया में समानांतर चल रहा उनका जीवन पानी और पर्यावरण के लिए समर्पित ही रहा। बिस्तर पर भी गाँधी शांति प्रतिष्ठान से निकलने वाली पत्रिका गांधी-मार्ग संपादित होती रही। उसे छोड़ा नहीं। पानी का भी कोई काम नहीं छोड़ा। फ़ोन पर जब भी कहता मिलने आता हूँ तो यह कहकर टाल जाते कि कहाँ आओगे दिल्ली में इतनी ट्रैफिक में, पत्रकारिता वैसे ही तुम्हारा इतना समय ले लेती है। मैं ठीक हूँ और फ़ोन पर तो बातचीत हो ही जाती है। फ़ोन का सिलसिला ऐसा रहा कि मैं अगर कुछ समय फ़ोन न करूं तो डायरी में से नंबर निकाल कभी घर और कभी दफ्तर वाले नंबर से फ़ोन कर लेते। मुझे शायद इकलौता उनका ही फ़ोन नंबर याद रहा। अब वो भी भूल जाऊं। क्योंकि, फ़ोन के दूसरे छोर से ...हाँ, अनुपम...की आवाज़ जो हर बार आश्वस्त करती कि कभी भी और किसी भी पहर में तुम फ़ोन कर अपना दुःख और सुख कह सकते हो- सदा के लिए खामोश हो गयी।

अनुपम मिश्र का जाना मेरे अपने निजी जीवन में एक हरे-भरे वृक्ष का अचानक से सूख जाना है। बीते कुछ सालों में पत्रकारिता की तपिश और थका देने वाली जिंदगी को उनकी छाया हमेशा मिलती रही। वे जब भी मिले, ये पूछना कभी नहीं भूले- 'और सब ठीक चल रहा है ना'। मिलने पर उनकी सरलता, सहजता और सौम्यता महीनों साथ लेकर घूमता रहा। कभी अचानक घर आ जाते, तो कभी हाल-चाल पूछते हुए चिट्ठी लिखने को बोल देते थे।

चिट्ठी लिखने का ऐसा सिलसिला कि कभी कहीं नौकरी की बात करनी हो या फिर नौकरी में दिक्कत आने की वे कहते कि उनको ऐसे, ऐसे पत्र लिख भेजो। शुक्रवार पत्रिका बंद होने के बाद मैंने पानी के मुद्दों से जुड़े पोर्टल में काम करना शुरू कर दिया। कुछ ही महीनों बाद दिक्कत शुरू हो गयी। संस्था के को-ऑर्डिनेटर 'चुटकी भर जीरे में ब्रह्मभोज' कर डालना चाहते थे। मैंने उन्हें अपनी दिक्कत बताई। उन्होंने कहा कि पत्र लिखो और कहो कि जिस काम से आनंद चला जाए उसे छोड़ देना ही ठीक होता है, फिर ये तो पानी का काम है।

उनसे मुलाकातों के बीच उनकी अनुपमता एक नहीं, कई जगह दिखाई दी। जब घर पहुंचा तो वे झाड़ू लगाते हुए मिले। मानो वह कह रहे हों कि आपको झाड़ू की तरह होना चाहिए, अपने काम में लगा हुआ। उनके झाड़ू में कोई राजनीतिक शोर और प्रपंच नहीं था। झाड़ू तो साफ़-सफ़ाई और घर के काम में बस हाथ बंटाने भर ही नहीं, बल्कि गाँधी जी के अपने काम खुद करने के मूल्य को एक अच्छे सपूत की तरह उतारने का जरिया भी था।

उनका दांपत्य जीवन भी अनुपम और अनूठा ही था, वैसा मैंने अपने जीवन में नहीं देखा। उनकी पत्नी मंजू जी के साथ उन्हें देखना, ऐसा था मानों स्त्री और पुरुष के बीच संबंधों का अप्रतिम उदाहरण। उन दोनों के बीच समर्पण की भावना थी। क्योंकि, उनके संबंधों में कोई झंडा नहीं, कोई डंडा नहीं था- था तो सिर्फ प्यार। एक बार अनुपम मिश्र जी का फ़ोन आया कि मैं और मंजू आपके घर आना चाहते हैं। वे आये भी थे। हमारे घर काफी देर बैठे रहे और खूब सारी बातचीत की। फिर, मेरे घर के पास तब दिल्ली में रह रहे संवेद और सबलोग के संपादक किशन कालजयी के घर चल पड़े। मैं उनके साथ रास्ता दिखाने चल पड़ा। रास्ते में एक अचार की दुकान देख वे बच्चों की तरह पुलकित हो उठे और वहां से अचार भी खरीदी। जीवन में ऐसी छोटी-छोटी बातों में ख़ुशी खोजने की सादगी मुझे भीतर तक छू गयी।

एक दिन ऐसे ही फिर फ़ोन आया और कहा कि मैं और मंजू आपके दफ़्तर आना चाहते हैं। दोनों ही तहलका के दफ्तर आये थे। तहलका में उनका कॉलम छपता था और मुझे ही उनसे लिखवाने की जिम्मेदारी दी गयी थी। मैं रात को लौटता और खाना खाकर फ़ोन पर उनसे डिक्टेशन लेता। कई बार उनके दफ्तर भी पहुँच जाता। छह महीने में शायद एक या दो बार उनका कॉलम नहीं छप पाया। जब मैंने तहलका छोड़ दिया तब उन्होंने वहां कॉलम लिखना बंद कर दिया। उनसे लिखवाने की खूब कोशिश की गयी, लेकिन उन्होंने कहा कि जिस दिन दफ्तर पर मेरे कॉलम न छपने को लेकर पाठक पत्थर फेंकने लगे तो ज़रूर लिख देंगे। इसमें संभव है किसी को उनका अहंकार दिख जाए और किसी को नखरा। उनका मकसद छपना नहीं था। वे पाठकों के लिए लिखते थे। जीवन मूल्यों को बनाये और बचाये रखने के लिए ही लिखते थे। वे दरअसल टोहते थे कि उनसे लिखवाने वाला विषय को लेकर कितना गंभीर है।

व्यावहारिक जीवन के प्रति इस बदलती दुनिया में वे एक ऐसे अनुपम और अनूठे व्यक्तित्व थे, जो विरले ही थे। उनके पास उनके अपने गांधीवादी मूल्य थे और उनका जीवन स्वयं शब्दों, अर्थों और नैतिक मूल्यों की ऐसी किताब था, जो हर व्यक्ति बार-बार पढ़ना चाहेगा। पिता भवानी प्रसाद मिश्र का पूरा प्रभाव था उन पर। इतना कि पूरे जीवन पर पिता की छांव दिखाई देती रही। पिता का उदाहरण उन्होंने कई मुलाकातों में दिया था और अक्सर देते रहते थे।